REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 9 | JUNE - 2018

हिन्दी साहित्य में समकालीन नारी विमर्श

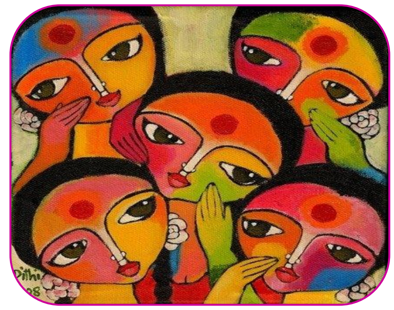

झाला शैलेषकुमार भरतसिंह
बी.ए., एम.ए., एम.एड्.

प्रस्तावना :

साहित्य में 'स्त्री विमर्श' के विषय में यह विवाद का विषय रहा है कि स्त्री विमर्श में स्त्रियों के लिए सुरक्षित क्षेत्र है या लेखन होने के नाते पुरुष की भागीदारी की भी सम्भावना रहती है। स्त्री–पुरुष दोनों को स्थान दिया जाय अथवा नहीं। इस संदर्भ में सभी विद्वान व आलोचक एकमत होते नजर नहीं आते हैं। हिन्दी साहित्य के कुछ प्रतिष्ठित लेखक व आलोचक यह स्वीकार करते हैं कि इसमें दोनों को शामिल किया जाना चाहिए, वहीं कुछ लेखक व आलोचक इसके प्रतिपक्ष में कहते हैं कि– सिर्फ स्त्रियों द्वारा लि नए साहित्य को ही 'स्त्री विमर्श' के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिए। जबकि बहुत का यह मानना है कि जरूरी नहीं है कि स्त्रियाँ ही स्त्रियों को सही रूप में अभिव्यक्त कर सकें क्योंकि कभी कभी उनका समाज को देखने का नजरिया, स्त्रियों की समस्याएँ, समाज द्वारा बनाए गये मूल्यों, आदर्शों, परम्पराओं एवं रूढ़ियों के मूल्यांकन की पुरुषोचित नजरिये से प्रभावित होती है। वे स्त्री होकर भी स्त्रियों की समस्याओं को सही ढंग से नहीं समझ पाती हैं। इसलिए 'सहानुभूति' और 'तदानुभूति' के छीने पर्दे को सही ढंग से समझकर किया गया कोई भी स्त्री विषयक लेखन 'स्त्री विमर्श' के भीतर आयेगा। क्योंकि एक स्त्री कलाकार, कवि या लेखक के सृजन रूप में जो भी विचलन पैदा करती है, वह एक सर्जक का विचलन है। स्त्री या पुरुष का नहीं बल्कि वह ऐसा तभी कर पाती है जब वह भूल जाती है कि वह स्त्री है या पुरुष।

'स्त्री–विमर्श' की चर्चा करने से पहले यह आवश्यक जान पड़ता है कि 'विमर्श' पर बात पहले कर ली जाए। डॉ0 हरदेव बाहरी ने 'हिन्दी पर्याय कोश' में 'विमर्श' शब्द के कई अर्थ दिये हैं– तबादला–ए–ख्याल, परामर्श, मशविरा, राय, बात, विचार विनिमय, विचार विमर्श सोच–विचार आदि। इन अर्थों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि 'विमर्श' में वह यूरोपीय नारीवाद की उग्रता व कट्टरता नहीं है, 'नारीवाद' जहाँ स्त्री को पुरुष के बरअक्स खड़ा कर देती है, वहाँ नारी विमर्श उभय में सामंजस्य, मैत्री बराबरी की भूमिका का निर्माण करता है। स्त्री पुरुष में परामर्श, मशविरा, रायशमारी, विचार विनियम हो सकता है।

विमर्श का मतलब किसी वस्तु के बारे में लोगों के बात–चीत करने के तरीके या सोचने की पद्धति से है। ये तरीके मिल–जुलकर लोगों की सामान्य धारणा को बनाते हैं। विमर्श का अर्थ किसी एक निश्चित फ्रेम वर्क में किसी विषय के बारे में सोचना है, धारणा है और धारणाकारी व्यक्ति विशेष की नहीं होती सामान्य लोगों की होती है। जैसे स्त्रियों के बारे में लोग क्या सोचते हैं, उनके बारे में क्या विचार रखते हैं यह सब विमर्श यानी डिस्कोर्स है। इसी तरह 'स्त्री–विमर्श' यानी स्त्री को समग्रता के साथ जानने, समझने और उसे बेहतर बनाने की पड़ताल है। ''स्त्री विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री–मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ–साथ बदलते सामाजिक संदर्भों में उसकी भूमिका, तलाशे गए रास्तों के कारण जन्में नए प्रश्नों के टकराने के साथ–साथ आज की स्त्री की मुक्ति का मूल प्रश्न उसके मनुष्य के रूप में अस्वीकारे जाने का प्रश्न ही है।''1 स्त्री के मनुष्यत्व को स्वीकारना आज मानव जाति का सबसे अहम सवाल बन गया है। क्योंकि आज के इस युग में भी मनुष्य की अवधारणा में मात्र पुरुषों को स्थान दिया गया है।

स्त्री विमर्श ''स्त्री की अस्मिता की लड़ाई आधी दुनिया को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है।''2 स्त्री का व्यक्ति के रूप में पहचान करना, अपनी सम्पूर्णता में जी सकना, अपनी प्रकृति एवं व्यक्तित्व विशेषताओं को आत्मसात कर प्रकाशित करना, मनुष्य जाति के बचे रहने की शर्त है।

स्त्री–विमर्श स्त्रियों के ऊपर सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से थोपी गयी मान्यताओं और रूढ़ियों के विरोध में उभरा वैचारिक आन्दोलन है। नारी समाज का अभिन्न अंग है, जब से सृष्टि में नर और नारी का सर्जन हुआ है तब से वर्तमान आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के परिवेश में नारी विमर्श एक महत्वपूर्ण मुद्दा बना हुआ है। समय परिवर्तन के साथ–साथ नारी विमर्श के संदर्भ में भी भिन्नता पायी जाती है और समय के साथ उसमें परिवर्तन भी आता है।

स्त्री विमर्श को प्रो0 गिरीश रस्तोगी एक जाग्रत आन्दोलन की मुहिम के रूप में स्वीकारते है। उनका कहना है कि– ''स्त्री विमर्श बहस का उतना विषय नहीं है जितना जागृति का।''3 इसमें स्त्री अपने विकास के अवसरों की तलाश करते नजर आती है– ''स्त्री विमर्श का मूल उद्देश्य महान रचना करने या श्रेष्ठ स्त्री चरित्रों को गढ़ने की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। इसका मूल उद्देश्य स्त्री मुक्ति के संदर्भ में अधिकाधिक अवसर तलाश करने की साहित्यिक प्रक्रिया से है। यह मुक्ति उसकी वैयक्तिक भी है और सामाजिक भी शारीरिक भी है और यौनिक भी।''4

नमिता सिंह का कहना है कि– ''जब हम स्त्री विमर्श की बात करते है तो उसका अर्थ सामाजिक विकास की प्रक्रिया से जुड़ा होता है। किसी भी समाज के विकास का पता इस बात से चलता है कि वहाँ नारी की स्थिति कैसी है जिसमें मुख्य पैमाना स्त्री की शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन और उसकी निर्णय क्षमता है। कहना न होगा ये सभी तत्व आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसी के साथ सामाजिक भी एक आवश्यक आयाम है। इन पायदानों पर चढ़ने के बाद ही स्त्री अपनी देह या अपने अधिकार की बात कर सकती है।

इसी के बाद वह स्वनिर्णय की स्थिति में होती है।''5 ''विमर्श का अर्थ है जीवन्त बहस। साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो विचार का विचार और वर्चस्व की प्राप्ति। अंग्रेजी में इसके लिए 'डिस्कोर्स' शब्द का प्रयोग किया जाता है। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट–पुटल कर देखना, उसे समग्रता से समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय संदर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना।''6 अर्थात् किसी विषय पर अभी तक जो लेखन या विचार होता आया है उस पर पुनः विचार कर उसकी दशा और दिशा का मूल्यांकन करना है। ''स्त्री विमर्श में व्यक्ति को अपनाने की स्वतंत्रता और स्वायत्तता का विचार है। यह विचार है उन लोकतंत्रात्मक मूल्यों की स्थापना का जो समता, समानता, स्वतंत्रता, सौहार्द, वर्गहीन मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते है। और उसी के अनुरूप स्त्री की भी प्रतिष्ठा होनी चाहिए। उसे ऐसे स्त्री कदापि नहीं स्वीकार है जो एक वर्ग, जाति, नस्ल राष्ट्र में बाँटी जा रही हो क्योंकि छद्म दमन का ही रूप है, शोषण का एक नया तरीका है।''7

स्त्री विमर्श प्रश्न के घेरे में पुरुष को नहीं रखता वरन् पुरुष तंत्र को खड़ा करता है। न्याय की खातिर न जाने कब से चली आ रही सामाजिक विधान को पलटकर वह स्त्री की भूमिका स्वीकार करने का साहस नहीं दिखा पाता है। इसीलिए आज की स्त्री नियम, कानून–कायदे की मूलभूत संरचना को ही पलट कर रख देना चाहती है। इस संदर्भ में तस्लीमा नसरीन का कहना है कि– ''कभी मेरी बहुत इच्छा थी कि जिस तरह शादियाँ करके पुरुष एक घर में चार बीबियाँ रखकर जीवन यापन का अधिकार रखता है, उसी तरह मैं भी चार शादियाँ करके चार पतियों के साथ जीवन बिताऊँ। ऐसी घटना से बहुत–सी लड़कियाँ उत्साहित होती और तभी लोगों की चेतना जगती कि जो नियम इस समाज में प्रचलित है, उन्हें उलट देने पर कैसा लगता है।''8 बड़ी बिडम्बना की बात है कि 21वीं सदी में भी हमारा अधिकांश समाज मध्यकाल की जड़ मानसिकता रीति–रिवाज, रूढ़ियों, नियमों, मान्यताओं, परम्पराओं, प्रणालियों और जीवन–पद्धतियों में जकड़ा है, उससे मुक्त नहीं हो सका, सम्पूर्ण नारी जाति का नारी इतिहास आदमी और स्त्री की मूक पीड़ा, उसके शोषण एवं दमन का इतिहास है। मजदूर की देह जैसे पूँजीपति का मालिकाना है वैसे स्त्री की देह, मन–मस्तिष्क और आत्मा पति (पुरुष) की। परन्तु सम्पन्न या विपन्न अथवा मजदूर तथा पूँजीपति और स्त्री–पुरुष के बीच का द्वन्द्व अलग हो जाता है क्योंकि स्त्री–पुरुष के द्वन्द्व में भी दोनों का हित अलग नहीं एक ही है।

स्त्री विमर्श में सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य है 'स्त्री–दृष्टि', समाज को देखने का स्त्रियोचित नजरिया अर्थात् स्त्री के लिए क्या सही है? क्या गलत है? इसका निर्णय स्त्री की दृष्टि से किया जाए, क्योंकि अब तक सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था यहाँ तक की कि स्त्री से जुड़ी हुई प्रत्येक समस्याएँ और उनको देखने का पक्ष पुरुषोचित रहा है। स्त्री दृष्टि उस दृष्टि को प्रमुखता देती है, जिसमें समाज, समाज द्वारा स्थापित मानदण्डों को स्त्रियों की दृष्टि से देखा जाए, उसे उसके नजरिये से परिभाषित किया जाए तथा उन मूल्यों, परम्पराओं और

आदर्शों की पुनर्व्यवस्था की जाए, जिसमें 'स्त्रीत्व' की छद्म छवि गढ़ते हुए एक निश्चित खाँचे में डाले रखा। उसकी अभिव्यक्ति को दबाए रखा और उसके लिए निश्चित मूल्य बनाये, जिसके अनुसार चलना स्त्रियों की मजबूरी बनी।

आज महिला लेखन में स्त्री वर्ग की शिकायतों, उसके प्रकट और अप्रकट क्रोध, छुपे हुए आक्रोश तथा जीवन के प्रति उसके विशिष्ट दृष्टिकोण को ज्यादा शिद्दत से अभिव्यक्ति मिल सकती है। रोजमर्रा की जिंदगी में निजी घटनाओं का जितना सटीक वर्णन एक स्त्री कर सकती है, उतना पुरुष नहीं कर सकता। इस प्रकार स्त्री–लेखन के द्वारा उनके निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति उनके भोगे हुए यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति है जिसे कोई पुरुष अपनी संवेदनशीलता से उस रूप में व्यक्त नहीं कर सकता जिस रूप में एक महिला व्यक्त कर सकती है। स्त्री–साहित्य की धारणा– 'साहित्य की धारणा से भिन्न है। ''स्त्री साहित्य वस्तुतः स्त्री की अनुभूति का साहित्य है। यह ऐसी अनुभूतियाँ है जो अभी क दबी हुई थी, दमित थीं, उत्पीड़ित थीं।''9

स्त्री साहित्य वह है जो स्त्री रचित है। स्त्री रचित होने के कारण ही उसे उस 'स्त्री–साहित्य' की कोटि में रखा जाता है। किन्तु 'स्त्रीवादी–साहित्य स्त्री पुरुष दोनों को लिखा हो सकता है। यह ऐसा साहित्य है जो स्त्री के हितों एवं स्त्रीवादी राजनीति का पक्षधर होता है। 'स्त्री साहित्य' की तुलना में स्त्रीवादी साहित्य व्यापक परिदृश्य को समेटता है। स्त्रीवादी चिंतन की दृष्टि से लिंग–भेद स्त्री–पुरुष के बीच की संरचनात्मक असमानता की बुनियाद है। स्त्री–साहित्य को मुख्यधारा के साहित्य को साहित्य की मुख्यधारा में रखकर ही पढ़ा जाना चाहिए जिससे साहित्य समृद्ध होगा। इस प्रकार चाहे स्त्री हो या पुरुष यदि स्त्री जीवन को मानवीय सरोकारों के संदर्भ में उनके संघर्ष को उद्घाटित करते है तो वह स्त्रीवादी साहित्यकार और उसका लेखन स्त्री साहित्य होगा।

'स्त्री दृष्टि' स्त्री विमर्श में साहित्य को दो रूपों खेमों में बाँटता है– स्त्री साहित्य और स्त्रीवादी/नारीवादी साहित्य। इसके पीछे विद्वानों और आलोचकों का तर्क है जो साहित्य स्त्री के द्वारा स्त्री के लिए विषय में लिया जाता है वह स्त्री–साहित्य कहलाएगा और जो साहित्य स्त्री दृष्टि की अवधारणा में स्त्री व पुरुष दोनों की रचनाओं को माना जाएगा जिसमें स्त्री सम्बंधी बुनियादी प्रश्नों को उठाया जाता है। यह दृष्टि न पितृसत्तात्मक मूल्यों, समाज द्वारा बनाए गये दोहरे मानदण्डों, लिंगभेद के कारण दयनीय जीवन स्थितियों में फँसी स्त्रियों एवं समाज में स्त्री की अलग छवि को परखने की नयी दृष्टि देती है। उनकी दृष्टि में स्त्री–शोषण एवं वर्चस्ववादी सामंती व्यवस्था है जिसने स्त्री को सदैव किसी न किसी नैतिकता, मर्यादा, आदर्श और पारिवारिक दायित्वों की सीमा में बाँधा हो, का बोध कराया। स्त्री दृष्टि इन तथ्यों को उजागर किया और उससे मुक्त होने की पहल भी की। इस प्रकार स्त्री साहित्य के भीतर केवल महिला रचनाकार ही आयेगी लेकिन जब हम स्त्रीवादी या नारीवादी साहित्य की बात करते है तो उसमें पुरुष और स्त्री दोनों का लेखन सम्मिलित होता है।

सामान्यतः हिन्दी में प्रयुक्त नारीवाद या स्त्रीवाद शब्द का समानार्थी अंग्रेजी शब्द 'फेमिनिज्म', मूलतः फ्रेंच भाषा में उन्नीसवीं सदी में प्रचलित शब्द है, जो चिकित्साशास्त्र में प्रयुक्त होता था। वह पुरुष देह में स्त्रीपन के गुण या पुरुष स्वभाव में व्यवहार करने वाली स्त्री को सूचित करने वाला प्रयोग था। बाद में अमेरिका में, बीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों में इस शब्द का उपयोग कुछ सामान्य विशेषताओं में दिखाने वाली महिलाओं के समूह के अर्थ में व्यवहृत होने लगा। यह मातृत्व एवं यौन–शुचिता की मिथकीय परिकल्पना से जुड़ा हुआ था। कालान्तर में यह संगठित स्त्री–समूह का पर्यायवाची शब्द बन गया जो वैचारिक बल पर पूरी स्त्रियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए कार्य करता है।

समाज में नारी के प्रति जागृति लाना तथा नारी के स्वत्व के अस्तित्व की पहचान को स्थापित करने का प्रयास ही नारीवाद अथवा नारी विमर्श है। इसमें नारी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की पहचान हेतु अनेक संघर्ष तथा आन्दोलन हुए और वर्तमान में जारी भी है जिनका महत् उद्देश्य नारी के लिए सुखद भविष्य का निर्माण करना है। नारी को निष्पक्ष न्याय मिले तथा उसके स्वस्थ दृष्टिकोण का निर्माण हो तभी समाज में व्याप्त लिंग भेद समाप्त हो सकेगा। पूरी दुनिया में अन्य बातों की तरह, स्त्री–मुक्ति की अभिधारा के विकास में भी पुरुषों का अहम योगदान है। इतिहास गवाह है कि जान स्टुअर्ट मिल की 'दि सब्जुगेशन ऑफ वुमन' (1809) से लेकर यह आधुनिक दृष्टि प्रवृत्त हुई।

फ्रेडरिक एंगेल्स की 'दि ओरिजिन ऑफ फैमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एण्ड द स्टेट' 1884 में प्रकाशित हुई, जिसकी चर्चा भी नारीवाद के विकास में महत्वपूर्ण है। विविध सामाजिक आन्दोलन हों या कला–सांस्कृतिक जागरण, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन हो या महिला आरक्षण बिल सबमें पुरुषों को देय है। स्त्रियों के पक्ष में सतत बोलने व कार्य करने वाले लोगों की दृष्टि रखकर पुरुष स्त्रीवाद और पुरुष स्त्रीवादी माने 'मेल फेमिनिज्म' और 'मेल फेमिनिस्ट' शब्द स्वीकृत हैं।

स्त्रीवादी लेखन में यह विवाद का विषय रहा है कि इसमें स्त्री के अलावा पुरुष को सम्मिलित किया जाय अथवा नहीं, तो बहुत से लोगों का मानना था कि पुरुषों के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है। इस संदर्भ में स्त्री के अनुभव की प्रामाणिकता की बात यद्यपि महादेवी वर्मा 'शृंखला की कड़ियाँ' में बहुत पहले कर चुकी थीं परन्तु उन्होंने 'स्त्री प्रश्न' को पुरुष के लिए वर्जित क्षेत्र नहीं माना था– ''पुरुष के द्वारा नारी चित्रण अधिक आदर्श बन सकता है। परन्तु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है किन्तु यथार्थ के अधिक समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है नारी के लिए अनुभव, अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त भी शायद ही दे सके।''10 पुरुष चाहे कितना भी ईमानदार हो उनकी भूमिका 'हमदर्द' से अधिक नहीं हो सकती। वे हमेशा पुरुष स्थिति में ही रहकर इसे 'विषय' के रूप में विचार करेंगे। स्त्रीत्ववाद पुरुष को 'कर्ता' की भूमिका देने से इंकार करता है। जैसा कि पंकज विष्ट कहते हैं– ''लेखन के संदर्भ में नारी पुरुष के भेद को खत्म करने वाली बात मूलतः पुरुष मानसिकता और वर्चस्व को बनाए रखने की साजिश के रूप में देखी जानी चाहिए जो नारी के वास्तविक सरोकारों और पीड़ाओं को अभिव्यक्ति में बाईपास का काम करेगी।''11

स्त्री केन्द्रित रचनाओं में स्त्री की पद स्थिति सिर्फ स्त्री होने से नहीं होती, उसकी भूमिका यदि एक खान मजदूर, एक वकील, एक शिक्षक या एक डॉक्टर की भी है तब रचनाकार एक घरेलू स्त्री होने के नाते उसके अनुभव समेट सकती है, तो एक खनन मजदूर, एक वकील, एक शिक्षक, एक डाक्टर होने के नाते पुरुष भी वे ही अनुभव कर सकता है। स्त्री देह के वे अनुभव जो सिर्फ स्त्री ही महसूस कर सकती है– में पुरुष लेखक की वही भूमिका होती है जो स्त्री रचनाकार होने के नाते पुरुष देह के अनुभवों की अभिव्यक्ति करते समय होती है। स्त्री के वैयक्तिक अनुभवों मासिक धर्म, गर्भावस्था, प्रसव आदि पर पुरुष का लेखन 'रचना' के धरातल पर तौला जाना महत्वपूर्ण है, न कि रचनावली के धरातल पर। यदि उसमें ताकत होगी तो सिर्फ पुरुष लेखन के आधार पर उसे नकारा जाना साहित्यिक न्याय नहीं है। ऐसे पुरुष रचनाकार भी स्त्रीवादी माने जायेंगे।

प्रख्यात कथा लेखिका चित्रा मुद्गल का मानना है कि– ''स्त्री विमर्श सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का दायित्व है। यदि वह बाबा नागार्जुन का स्त्री–विमर्श है तो हमें मंजूर है। मैं नहीं मानती कि जो महिलाएँ लिखेंगी, वही स्त्री विमर्श का हिस्सा होगा। लेकिन इसके साथ मेरी कुछ शर्त भी है। मेरा स्पष्ट मानना है कि कुछ पुरुष स्त्री–विमर्श को गलत दिशा दे रहे हैं। वे स्वच्छंदता को स्त्री–विमर्श का नाम देना चाहते हैं। विडम्बना यह है कि कुछ लेखिकाएँ भी उनके बहकावे में आ रहीं है। यह दिशा हमें मंजूर नहीं है। इसलिए मैं जरूर मानती हूँ कि 'स्त्री–विमर्श' की दिशा हम लेखिकाएं ही तय करेंगी।''12

स्त्री पर केन्द्रित प्रत्येक कृति स्त्री विमर्श की सीमा में नहीं आती, न ही स्त्री रचनाकार द्वारा रची गयी प्रत्येक रचना। ''स्त्री दृष्टि 'सहजात दशा न होकर अर्जित स्थिति है।' सिर्फ स्त्री होने के नाते स्त्री–दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती। स्त्रियाँ स्वयं की दुनिया को एक मानक पुरुष दृष्टि से देखने की इतनी अभ्यस्त होती हैं कि उन्हें वह अपनी दृष्टि 'स्त्री की दृष्टि' महसूस होती है। कई स्त्री रचनाकारों द्वारा स्त्री को इसी पुरुष दृष्टि से परखा गया है। इन स्त्री रचनाकारों को हाशिये पर रखकर ही बात करनी हो जो पुरुष दृष्टि से आक्रान्त हैं एवं पुरुषवादी नजरिए तक पहुँचने को स्त्री की मुक्ति में शामिल करती हैं। इसके समानान्तर पुरुषों में 'स्त्रीदृष्टि' उसी तरह सम्भव हो सकती है जिस तरह स्त्रियों में 'पुरुष दृष्टि'।''13 'स्त्री का पढ़ना' और 'स्त्री की तरह पढ़ना', 'स्त्री की तरह अनुभव' में 'स्त्री की तरह पढ़ना' और 'स्त्री की तरह अनुभव' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है कि लेखक जिन तथ्यों–सत्यों की अपनी बारीक संवेदना शक्ति से जिस तरह पकड़ पाता, कई बार भोक्ता भी नहीं पकड़ पाता है। अनुभव करने की क्षमता, संवेदना और उसी स्तर पर अभिव्यक्त करने की क्षमता, लेखक को लेखक बनाती है। क्योंकि भोगने और महसूस करने की क्षमता सभी में एक सी नहीं होती। संवेदना के बिना रचना बन ही नहीं सकती चाहे कितना ही सामाजिक यथार्थ आपके पास हो। यह अतिवादी बात है कि स्त्री ही स्त्री लेखन कर सकती है। ''एक स्त्री कलाकार, कवि या लेखक के सृजन रूप में जो भी विचलन पैदा

करता है, वह एक सर्जक विचलन है। स्त्री या पुरुष का नहीं, बल्कि वह ऐसा तभी कर पाती है जब वह भूल जाती है कि वह स्त्री है या पुरुष। सृजन को सृजन की तरह देखा जाना चाहिए।''14

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है और साहित्य भी पितृसत्ता की कैद से मुक्त नहीं रहा है, चाहे वह आदिकालीन साहित्य हो, मध्यकालीन हो या आधुनिक। इस संदर्भ में शालिनी माथुर लिखती है कि– ''साहित्य सर्जना पर अधिकतर पुरुषों का ही अधिकार रहा है। अतः साहित्य में स्त्री के रूपाकार की सर्जना भी पुरुष वर्चस्व के अधीन रही। उसमें स्त्री भी वही सोचती और करती हुई निरूपित हुई, जैसे सोचती और करती हुई स्त्री पुरुष चाहता है। साहित्य में चित्रित स्त्री भाव भी पुरुष द्वारा निर्धारित निरूपित कर रहा है। इसलिए वह स्त्री भाव स्त्री का भाव हो यह जरूरी नहीं।''15 स्त्री विमर्श, स्त्रीवादी लेखन को लेकर गम्भीर रहा है। स्त्री विमर्श यह मांग करता है कि पुरुष आलोचना के स्थायित्व प्रतिमानों के संदर्भ में स्त्री प्रश्न उठाए। सत्ता के प्रतिमानों को अपनाने से उत्पीड़न की स्थिति नहीं बदलती।

स्त्रीवादी चिंतन आज विज्ञान के मर्दवादी आख्यान के सामने भी प्रश्नचिह्न लगाती है– ''पितृसत्ता अपने को मजबूत बनाने के लिए पहले धर्म का सहारा लेती थी, आज विज्ञान का सहारा लेती है। विज्ञान की मदद से हजारों लाखों की संख्या में लड़कियों की भ्रूण हत्याएँ हो रही हैं। कहीं भूल से भी वह पैदा हो ही गई तो कुपोषण की शिकार हो मरे किसी तरह।''16 स्त्रीवादी विमर्श में समकालीन परिदृश्य में स्त्री की भूमिका और अस्मिता लेकर जन्मी विसंगतियों के पहचान की सजग अकुलाहट, छटपटाहट है। उसमें पश्चिम में चल रहे स्त्रीवादी आन्दोलनों की हूबहू नकल से बचने के सार्थक प्रयत्न दिखाई देते हैं। इसके साथ ही आन्तरिक अन्तर्विरोधों से जूझते हुए समन्वित कार्ययोजना की कोशिश भी दिखायी देती है। हलाँकि स्त्रीवादी आन्दोलन का विस्तार शहरी मध्यवर्ग की स्त्रियों तथा उच्चवर्गीय स्त्रियों के बीच व्यापक है किन्तु सीमित स्तर पर उसने ग्रामीण समाज की स्त्रियों तथा निम्नवर्गीय स्त्रियों में भी मुक्ति की चेतना पैदा की है।

समकालीन स्त्री–विषयक चिंतन स्त्री जीवन की समस्याओं एवं दलन के अनुभवों की अभिव्यक्ति करता है। आधुनिक नारीवाद स्त्री संदर्भ में पारम्परिक ज्ञान और दर्शन को चुनौती देता है। ''नारीवाद एक ऐसा विचार है जो कि पुरुष और स्त्री के मध्य असमानता को स्वीकार कर नारी के सबलीकरण की प्रक्रिया को बौद्धिक एवं क्रियात्मक रूप से प्रस्तुत करता है। नारीवाद एक विचारधारा भी है और एक आन्दोलन भी। नारीवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत मूल्यरूप से समानता व सबलीकरण के माध्यम से महिलाओं व पुरुषों के मध्य व्याप्त असमानता को नकारना है।''17 ''स्त्रीवादी साहित्य स्त्री–पुरुष दोनों का लिखा हो सकता है। यह एक ऐसा साहित्य है, जो स्त्री के हितों एवं स्त्रीवादी राजनीति का पक्षधर होता है।''18 ''साहित्य में स्त्री विमर्श का अर्थ मात्र स्त्री द्वारा स्त्री के ही विषय में स्त्रीवादी मुद्रा में लिखा गया साहित्य नहीं है। अर्थात् साहित्य में स्त्री के विमर्श को स्त्री विषयक आघात या स्त्री–पुरुष टकराव या स्त्रीवाद तक सीमित करना गलत समझदारी है।''19

स्त्रीवाद या नारीवाद की कोई निश्चित परिभाषा स्वीकृत नहीं है। संकल्पनाओं के विविध पक्षों को लेकर स्त्रीवादियों के बीच बहस अनवरत जारी है। नारीवाद को स्त्रियों द्वारा घर–परिवार, काम–काज एवं समाज में होने वाले समस्त शोषणों का का विरोधी सोच–विचार कहा जा सकता है। 'फेमिनिज्म' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 25 अप्रैल, 1895 को 'अन्तेन्वय' नामक पत्रिका में हुआ था जिसका अर्थ है– अपनी स्वायत्तता को स्थापित करने वाली। इसमें संदेह बिल्कुल नहीं होना चाहिए कि स्त्री–पुरुष समतावाले मानवीय दर्शन से प्रेरित होकर नारीवाद का आरम्भ हुआ था, जो स्वतंत्रता, संघर्षहीन पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन व्यवस्था की कामनाओं को पालता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था और उसकी परिपोषक सामाजिक व्यवस्था से हाथ छुड़ाने के लिए स्त्री जाति मजबूर हो रही थी। इसी कारण पूरे संसार के समाजों में स्त्री पक्षीय आशयों का पुरजोर स्वागत हुआ। इसमें स्त्री के व्यक्तित्व, अस्तित्व एवं समस्याओं पर विशेष तरह से सोच–विचार होने लगा। स्वाभाविक रूप से पितृसत्तात्मक समाज एवं वर्चस्ववादी संस्कृति के परम्परागत रवैयों पर प्रश्न चिह्न लगाए गये। पुरुषाधिपत्य से नियंत्रित समाज को पूर्णतया बदलने के लिए कार्यरत आन्दोलन के रूप में स्त्रीवाद को राजनीतिक महत्व मिलने लगा। परवर्ती समय में नारीवादी की चर्चा में लिंग या लिंगस्तर, दैहिक राजनीति, यौनता आदि से लेकर वर्ग, वर्ण, भाषा, देश, प्रदेश जैसे विषयों को भी मिला दिया गया। ई0 पोर्टर ने अपनी किताब 'विमन एण्ड मोरल आइडेंटिटी' (1991) में नारीवाद को ''यौन अस्मिता के कारण स्त्रियों के साथ होने वाली समस्त प्रकार की उपेक्षा, उत्पीड़न, असमानता और अन्याय से मुक्ति का रास्ता खोजने का वैचारिक दर्शन''20 बताया।

आलोचक स्त्री–लेखन को पुरुष लेखन के समानान्तर चलने वाली धारा मानते हैं। वर्जीनिया वुल्फ ने लिखा है– ''स्त्री लेखन स्त्री का होता है, स्त्रीवादी होने से बच नहीं सकता। अपने सर्वोत्तम में वह स्त्रीवादी ही होगा।''21

डॉ0 मैनेजर पाण्डेय स्त्री और पुरुष दोनों की दृष्टि में अन्तर स्वीकारते हुए कहते है कि– ''जब पुरुष किसी स्त्री की पीड़ा यातना की चिन्ता करता है तो वह अधिक सहानुभूति या सहृदयता बरतता है।'' पंकज विष्ट लिखते हैं कि– ''लेखन के संदर्भ में नारी पुरुष के भेद को बनाए रखने की ऐसी साजिश के रूप में देखी जानी चाहिए, जो नारी के वास्तविक सरोकारों और पीड़ाओं को अभिव्यक्ति में बाई पास का काम करेगी।''22

ममता कालिया का विचार कुछ अलग है। वे कहती है कि– ''मैं नहीं मानती कि 'स्त्री विमर्श' वहीं से शुरू होता है, जहाँ स्त्री लेखन शुरू होता है। स्त्री विमर्श तो हर उस जगह पर हैं, जहाँ स्त्री का प्रतिकार है। यह मुंशी प्रेमचंद के साहित्य में है, यह यशपाल के 'झूठासच' में भी तब शुरू हो जाता है जब स्त्री लेखन की शुरूआत नहीं हुई थी, मुझे लगता है कि स्त्री–विमर्श को आज सही ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है। मेरा मानना है कि स्त्री विमर्श स्त्री के प्रतिकार का विमर्श है और यह उसे संघर्ष की, उससे लड़ने की ताकत देता है।''23

रेखा कस्तवार लिखती हैं– ''स्त्रीवादी लेखन का प्रमुख नारा है 'पर्सनल इज़ पोलिटिकल'। यह नारा स्त्री के संघर्षों, व्यक्तिगत अनुभवों और सत्य का खुलासा स्त्री की जुबानी करने का पक्षधर है ताकि उसकी त्रासद स्थितियों का बोध समाज को हो सके। स्त्री लेखन जब अपने वैयक्तिक अनुभवों की अभिव्यक्ति की बात करता है तब रचना की नायिका के साथ स्त्री रचनाकार को जोड़कर देखना पाठक के लिए आसान हो जाता है। 'फेक्टस' और 'फिक्शन' का भेद मिट जाता है। 'स्त्री जब लिखती है तब अपने निजी जीवन और निजता को दाँव पर लगा रही होती है। अपने घर–परिवार और समाज का भय और प्रतिक्रिया का डर अवचेतन रूप से उसकी कलम को संचालित कर 'सेल्फ सेंसर' का काम करता है।''24 आगे वह पुनः कहती हैं कि– ''स्त्री जब स्त्री के बारे में लिखती है स्वतंत्रता, अस्मिता, समान अवसरों और अधिकारों के बारे में लिखती है व्यवस्था के लिए खतरा पैदा करती है। आन्तरिक और बाह्य जगत के अनुभवों को दुःसाहस के साथ लिखने वाली न केवल भारतीय वरन् समूचे विश्व साहित्य में महान लेखिकाओं का त्रासद जीवन शोध का विषय है।''25 इस प्रकार स्त्रीवादी दृष्टि की यदि व्यापक परिकल्पना की जाए तो इसमें न केवल स्त्रियों के लेखन को बल्कि उन पुरुषों को भी शामिल किया जा सकता है जो स्त्रियों के शोषण, उत्पीड़न एवं उनकी सम्भावनाओं के उचित समाधान से सरोकार रखते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2013, पृ0 24
2. वही, पृ0 24
3. स्त्री विमर्श : विविध पहलू, संपा0 कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2011, पृ0 41
4. वही, पृ0 75
5. स्त्री विमर्श का यथार्थ, ममता कालिया, किताब वाले, नई दिल्ली, संस्करण–2015, पृ0 42
6. नई सहस्राब्दी का स्त्री विमर्श : साहित्यिक अवधारणा एवं यथार्थ, संपा0 डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2010, पृ0 ग्प (भूमिका से)
7. हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श, डॉ0 संजय सिंह, अनुजा श्रीवास्तव, स्नेह प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2009, पृ0 116
8. हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श, संजय सिंह, अनुजा श्रीवास्तव, स्नेह प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2009, पृ0 115
9. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड, प्रथम संस्करण–2000, पृ0 5
10. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण–2004, पृ0 66
11. स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृ0 20
12. हिन्दुस्तान पत्र, साक्षात्कार : चित्रा मुद्गल से स्त्री विमर्श पर, 8 मार्च 2016

13. स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृ0 22
14. वही, पृ0 23
15. रचना समय (कविता विशेषांक), संपा0 वृजनारायण शर्मा, अतिथि सम्पादक, नरेश सक्सेना, पृ0 134
16. औरत : उत्तर कथा, संपा0 राजेन्द्र यादव/अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, बाहर और भीतर की दुनिया (लेख), प्रभा खेतान, पृ0 144
17. स्त्रियाँ पर्दे से प्रजातंत्र तक, दुष्यंत कुमार, पृ0 15
18. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्करण–2000, पृ0 6
19. आधी जमीन, राहें अलग हैं पर मंजिल एक, संपा0 सविता सक्सेना, संयुक्तांक जनवरी–जुलाई–2005, पृ0 7
20. स्त्री अध्ययन की बुनियाद, प्रमीला के0पी0, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2015, पृ0 13
21. महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना, संपा0 वीरेन्द्र सिंह यादव, पैसेफिक पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012, पृ0 128
22. हंस, संपादक राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, जनवरी–1999, पंकज बिष्ट (संपादकीय से) पृ0 31
23. हिन्दुस्तान पत्र, साक्षात्कार : चित्रा मुद्‌गल से स्त्री विमर्श पर 8 मार्च, 2006
24. स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृ0 कवर पेज
25. वही, पृ0 कवर पेज

झाला शैलेषकुमार भरतसिंह
बी.ए., एम.ए., एम.एड्.